Universe Journal of Education & Humanities ISSN 2348-3067

Volume-5, No. I, Feb.-2018, pp.Hin.26-30

आन्वीक्षिकी का यर्थाथ ऐतिहासिक अवलोकन

श्री दीपक उदय (शोधार्थी) दर्शनशास्त्र विभाग,
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर राजस्थान भारत।
डॉ.राजकुमारी जैन (शोध निर्देशिका)

तत्त्वज्ञान रूपी महासागर में डुबकी लगाकर तदन्तरगत सिद्धान्त रत्नों को निकालकर, उनकी प्रमाद रहित परीक्षा करके सोने की तॉत में पिरोकर वह हार वाङग्देवी सरस्वती के कण्ठ में पहनाना न्यायशास्त्र का कार्य है।[1] इसलिए नैयायिको ने सृष्टि के खदान से शोधपूर्वक पदार्थो को खोजकर उनकी संख्या स्वभाव तथा आकार एवं उनका परस्पर सम्बन्ध भी न्यायशास्त्र से निश्चित किया है इसलिए यह शास्त्र पदार्थ परीक्षण रूप है। यह परीक्षण का कार्य अव्याहत चल रहा है। प्रमाण से लेकर निग्रहस्थान तक 16 शब्दों का द्वन्द्व समास है। इनके तत्त्व अर्थात् स्वरूप का ज्ञान तत्त्वज्ञान है तत्त्वज्ञान शब्द का अर्थ है सम्यग्ज्ञान। तर्क भाषाकार इसके लिए "तत्त्वज्ञानं सम्यग्ज्ञानम्"[2] कहते है। न्याय शास्त्र ने संशय का विवरण करते हुए संशय निराकरण पूर्वक तत्त्वज्ञान की प्रस्थापना की पद्धति बताई है यही कारण है कि न्यायशास्त्र के अध्ययन के बिना तत्त्वज्ञान का अध्ययन कभी नही हो सकता। ज्ञान की प्रमुख धाराओं में आन्वीक्षिकी या न्यायविधा पदार्थो के यर्थात् स्वरूप को जानने की एक महत्त्वपूर्ण विधि का प्रतिपादन करती है। अति सूक्ष्म दृष्टि से जिसमें सभी प्रकार के वितर्को को दूर करते हुए संशय आदि रहित जो तात्त्विक ज्ञान का साधन है वह आन्वीक्षिकी विद्या कहलाती है।

मुख्य शब्द– आन्वीक्षिकी, दर्शन, अन्वीक्षा, त्रयी, न्याय दर्शन।

भारतीय दर्शन की परंपरा में न्याय दर्शन का स्थान उच्च है। और इसे अत्यधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। साधारणतः जनमानस में न्याय शब्द का अर्थ 'कानून' या 'नियम' आदि के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः उचित या यथार्थ ज्ञान को 'न्याय' कहा जाता है। संकीर्ण अर्थ में न्याय शब्द का प्रयोग प्रमाणों में अन्यतम पदार्थ अनुमान के लिए किया जाता है।"[3] वैयाकरणिक दृष्टि का आधार लेकर आचार्य कुँवरलाल व्यासशिष्य 'न्याय' शब्द का विस्तृत अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "वैयाकरणित दृष्टि से 'नि' उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' धातु में ध अ प्रत्यय लगाने पर 'न्याय' पद की व्युत्पत्ति हुई है जैसा कि पाणीनिसूत्र (अष्टा. 3/3/3) से ज्ञात होता है। अतः जो ज्ञान या पदार्थ नियम से चलता है, वही न्याय (उचित) है, यह अर्थ हुआ, इसी प्रकार किसी प्रतिपाद्य या विषय प्रमेय की सिद्धि जिन प्रमाणों के आधार पर की जा सके वह न्याय है।"[4] इन शब्दार्थों से यही स्पष्ट होता है कि 'न्याय' का अर्थ है प्रमाणों द्वारा तत्व परिक्षण जो मूलतः तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा है। प्राचीन संस्कृत वाड्.मय में 'दृष्टांत'[5] के अर्थ में भी 'न्याय' शब्द प्रयुक्त हुआ हैं। दृष्टांत में प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन के द्वारा प्रमेयपदार्थ की सिद्धि की जाती है इसलिए न्याय को परीक्षण या प्रमाणशास्त्र भी कहते हैं। अतः शब्दार्थ को देखकर यह स्पष्ट होता है कि न्यायशास्त्र को तर्कशास्त्र, प्रमाणशास्त्र, हेतु विद्या, वाद विद्या तथा अन्वीक्षकी अर्थात् समीक्षात्मक परीक्षण भी कहते हैं।[6] शान्तिपुर के महामनीषी, स्मृति तथा न्यायदर्शन के अनेक ग्रंथों के व्याख्याकार राधामोहन गोस्वामी भट्टाचार्य ने न्यायसूत्र विवरण नामक ग्रंथ में लिखा है कि श्रवण के पश्चात् ईक्षा अर्थात् वेदोपदिष्ट आत्ममनन को आन्वीक्षा कहते है।[7]

परम्परागत रूप से **अर्थशास्त्र** के प्रणेता कौटिल्य अथवा चाणक्य माने जाते हैं, जिनके बौद्धिक चातुर्य ने मौर्य साम्राज्य को बल प्रदान किया था। उक्त परम्परा को मान लें, तो अर्थशास्त्र की रचना लगभग चौथी शताब्दी ई.पू. में हुई थी।

जैकोबी का कथन है कि इस ग्रंथ का पता लगने के बाद "हमें भारतीय दर्शन का इतिहास लिखने का एक सुनिश्चित प्रारंभिक आधार मिल गया।" निसंदेह यह सर्वविदित है कि अर्थशास्त्र, माधव अथवा हरिभद्र की कृतियों की भांति भारतीय दर्शन की न तो कोई व्याख्या हैं और न भारतीय दार्शनिक विचारों का संग्रह। तब जैकोबी ने भारतीय दर्शन का इतिहास लिखने के संबंध में इसे इतना महत्त्वपूर्ण क्यों माना ? उत्तर यह है कि यद्यपि यह प्रथमतः प्राचीन राजनीतिक अर्थशास्त्र संबंधी कृति है, तथापि इसमें तत्कालीन 'ज्ञान की शाखाओं' (विधाओं) का बहुत ही साफ–साफ और सिलसिलेवार वर्गीकरण है तथा इन शाखाओं के अंतर्गत दर्शन का स्थान निरूपित किया गया है। कौटिल्य ने भारतीय दार्शनिक स्थिति के दो

Scanned by CamScanner

प्रमुख विषयों पर प्रकाश डाला है। एक आध्यात्मक विद्या तथा दूसरी तर्क विद्या या वाद विद्या।[8]

सर्वप्रथम, उन्होंने ज्ञान की चार स्पष्ट शाखाओं का निरूपण किया है और उन्हें आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दंडनीति की संज्ञाएं दी जाती है।"

तर्कशास्त्र के लिए प्रयुक्त प्राचीन भारतीय शब्द आन्वीक्षिकी है। लेकिन इस शब्द में तर्कशास्त्र की अवधारणा अकारण निहित नहीं थी। वैयाकरण पाणिनि के अनुसार इसे आन्वीक्षिकी इसलिए कहा गया क्योंकि अन्वीक्षा – (अनु+इक्ष) – अर्थात् अनुबोध इसका उद्देश्य है। आगे चलकर इसके लिए प्रायः ही अनुमान शब्द का प्रयोग होने लगा। गौतम ने न्याय–सूत्र में बताया है कि अनुमान को क्यों उत्तर–ज्ञान कहते हैं: **"अथ तत्पूर्वक विविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टं च।"** तात्पर्य यह कि अनुमान किसी पूर्ववर्ती प्रत्यक्षज्ञानात्मक अनुभूति के आधार पर ही संभव है। इसलिए कौटिल्य को समझने के लिए मुख्य रूप से यह ध्यातव्य है कि अन्वीक्षा शब्द चूंकि अनुमान के समरूप है, इसलिए उन्होंने आन्वीक्षिकी शब्द से परवर्ती काल में प्रचलित अनुमान–विद्या का अर्थ ग्रहण किया, जो बदले में प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक प्रमाण पर अथवा और भी सहज रूप में कहें तो प्रत्यक्ष अनुभूति पर निर्भर होता है। अतएव जैकोबी ने दर्शन के रूप में आन्वीक्षिकी की जो व्याख्या प्रस्तुत की है, उसे इस शर्त के साथ स्वीकार करना होगा कि स्वयं कौटिल्य की दर्शन संबंधी अवधारणा में यथार्थ के प्रति कथित रहस्यात्मक, अंतर्ज्ञानात्मक अथवा वेदानुमोदित संदर्भों का कोई स्थान नहीं। कौटिल्य के अनुसार दर्शन तर्क बुद्धि से संबद्ध है[10] और वह बुद्धिसंगत विश्लेषण के लिए प्रत्यक्ष अनुभूति द्वारा प्रस्तुत आधार सामग्री को ही स्वीकार करता है।

त्रयी से कौटिल्य का तात्पर्य ब्रह्मविज्ञान से है, जैसा कि जैकोबी कहते हैं। लेकिन यह एक विशेष प्रकार का ब्रह्मविज्ञान है। त्रयी शब्द से 'तीन' का बोध होता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में वेदों की ओर इंगित करने की यह अत्यंत लाक्षणिक विधि थी। इस प्रकार त्रयी से संकेत विशिष्टतः वैदिक ब्रह्मविज्ञान की ओर है, न कि अन्य किसी प्रकार के ब्रह्मविज्ञान की ओर। संभवतः यह स्वाभाविक ही है। परंपरा के अनुसार कौटिल्य का जो समय निर्धारित किया गया है, उसे स्वीकार करने पर हम सकारण यह कह सकते है कि कौटिल्य के समय बौद्ध और जैन ब्रह्मविज्ञान – अर्थात् भारत के दो अन्य महान पारम्परिक ब्रह्मविज्ञान ही वह ब्रह्मविज्ञान है जिसे वह मान्यता देते हैं।

परन्तु कौटिल्य के संबंध में एक और भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह आन्वीक्षिकी को त्रयी से स्पष्टतः अलग मानते हैं। यदि उन्होंने आन्वीक्षिकी को दर्शन के अर्थ में स्वीकार किया तथा उन्होंने इसी अर्थ में उसे स्वीकार किया है। तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वास्तविक दर्शन की दूसरी पहचान है धर्मनिरपेक्षता। दर्शन ब्रह्मविज्ञान नहीं है, वह धर्मशास्त्र ज्ञान अथवा वेद ज्ञान नहीं है।[11] वह पूर्ण रूप से ज्ञान की एक अलग शाखा है। जिसमें प्रवृत होकर कोई भी व्यक्ति अपने अभिष्ट क्षेत्र में सफलता अर्जित कर सकता हैं। दर्शन को सचमुच ही आन्वीक्षिकी अथवा अनुभूतियों के बुद्धिसंगत विश्लेषण के रूप में ज्ञान की धर्मनिरपेक्ष शाखा की कोटि में ही माना जा सकता हैं।[12] लेकिन ध्यान देने की बात है कि कौटिल्य के युग में भी दर्शन के संबंध में इस तरह के विचार का काफी विरोध था। ज्ञान की चार शाखाओं संबंधी उनकी सारणी को अन्य लोगों ने स्वीकार नहीं किया। कौटिल्य ने जिसे दर्शन के रूप में स्वीकार किया, उसी को अर्थात् **आन्वीक्षिकी** को मनु के अनुयायियों ने स्वीकार नहीं किया।[13] मनु के अनुयायी उसे ज्ञान की एक स्वतंत्र शाखा मानने से इंकार करते हैं। लेकिन वे ऐसा रूख क्यों अपनाते हैं ? कौटिल्य कहते है, कि वे (मनु के अनुयायी) त्रयी में ही आन्वीक्षिकी को भी अंतर्विष्ट करते है और फलतः उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नही मानते।[14] इसका तात्पर्य है कि मनु के अनुयायी जिस दार्शनिक गतिविधी को स्वीकार्य मानते है वह बस वेदानुशीलन में निहित है : बुद्धिसंगत विश्लेषण को धर्मग्रंथो के अधीन होना होगा। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि मनुस्मृति ओर समवर्गी विधि–ग्रंथो में इस विचार को किस भांति कार्यान्वित किया गया है और इससे भारतीय दार्शनिक स्थिति को कितनी क्षति पहुंची।[15]

यद्यपि कौटिल्य धर्मग्रन्थों और उनके अध्ययन–अनुशीलन के महत्व का विरोध नही करते, तथापि यथार्थ जीवन के प्रति तर्कसंगत, बुद्धिसंगत, दृष्टिकोण का उनकी दृष्टि में अपना स्वतंत्र महत्व है। वह न केवल तर्क की स्वतंत्र क्षमता को स्वीकार करते है, बल्कि बड़े साहस के साथ यह घोषणा करते है कि ज्ञान की सभी शाखाओ में तर्कशास्त्र और तर्कशास्त्रोन्मुख दर्शन का सर्वाधिक महत्व है। इसलिये उनका यह श्लोक प्रसिद्ध हैं– "प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्। आश्रय सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मत।"[16] अर्थात् आन्वीक्षिकी सभी विद्याओ के वीच दीपक के समान है, सभी गतिविधियो की प्रेरक शक्ति है और सभी सद्गुणो की खान है, यही मेरा मत है।[17]तत्त्वोपप्लवसिंहः पुस्तक के वाचारम्भण में राधावल्लभ त्रिपाठी इसकी व्याख्या में लिखते है कि– आन्वीक्षिकी समस्त विद्याओं के बलावल का परीक्षण करते हुए लोक का उपकार

Scanned by CamScanner

करती है, व विपत्ति और अभ्युन्नति में बुद्धि को स्थिर रखती है, तथा प्रज्ञावाक्यों में वैशारद्य प्रदान करती है। आन्वीक्षिकी सदैव समस्त विद्याओं का दीपक, सारे कर्मो का उपाय तथा समस्त धर्मों का आश्रय मानी गई है।[18] कौटिल्य ने यह भी कहा कि आन्वीक्षिकी प्रज्ञावाक्यों में वैशारद्य उत्पन्न करती है।[19]

डॉ. जगदीश चन्द्र जैन अपनी पुस्तक "भारतीय दर्शन एक नयी दृष्टि" में लिखते है कि –न्याय सूत्रों में ईश्वर की गणना 11 प्रमेयों में नहीं की गयी और न स्पष्ट रूप से आत्मा में ही उसका अन्तर्भाव किया गया है। इससे जान पड़ता है कि इस दर्शन के शैशव काल में ईश्वर के लिए स्थान नहीं था। परन्तु भाष्यकार वात्स्यायन (ईसा की तीसरी–चौथी शताब्दी) के समय ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार किया जाने लगा।[20] न्याय दर्शन के इतिहास मे वात्स्यायन के समय से ही मोक्ष का बोलबाला शुरू हो जाता है। वात्स्यायन का जन्म कदाचित गुप्तकाल में हुआ था। इस युग में भारतीय विज्ञान के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण कार्य हुए और गुप्त राजाओं के संरक्षण को इसका आंशिक श्रेय प्राप्त है। लेकिन संरक्षण के इस रूप को कुछ का कुछ नही समझ लेना चाहिए। किन्तु अपनी वैज्ञानिक मान्यताओं के बचाव के लिए किस तरह वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त को भोंड़े अंधविश्वास को तरजीह देनी पड़ी।[21] इस परिकल्पना से कि गुप्त शासकों ने विज्ञान के प्रति व्यापक नीति अपनायी थी, उक्त प्रश्न का कोई उत्तर नही मिला। इसके विपरीत, यह मानने के आधार मौजूद है कि विज्ञान का सीमित रूप से समर्थन करने के साथ, गुप्त शासकों ने धर्मशास्त्र–प्रणेताओं द्वारा कल्पित ढांचे के विचारधारात्मक प्रचार कार्यों के लिये ब्राह्मणों को विशेष जिम्मेदारिया सौंपी। इस संबंध में हम डॉ. रामसरण शर्मा के विश्लेषण को देखे :– "यह खेतीबारी के विस्तार का युग था। हमें इसका संकेत इस बात से मिलता है कि पिछड़े क्षेत्रो में ब्राह्मणो को भूमि–अनुदान प्राप्त हुए।" लेकिन हमें इन अनुदानों को पूर्वकालीन धर्मनिष्ठा संबंधी कृत्य नही मान लेना चाहिए।

क्या वात्सयायन व्यक्तिगत रूप से इसी तरह के वृत्तिभोगी है? क्या वह इस प्रकार के वृत्तिभोगियों के ही परिवार अथवा समूह के है ? इन बातो का उत्तर उनका सही समय और स्थान निश्चित करने और प्रामाणिक शिलालेखों तथा अन्य अभिलेखों की भलीभांति जांच करने के बाद ही दिया जा सकता है। वह एक ऐसी जाति के है, जिसके पास प्राप्त अनुदानों और उपहारों के सिवा जीविका का कोई दूसरा प्रत्यक्ष साधन नही है। मोटे तौर पर इतना तो कहा ही जा सकता हैं कि वह एक ऐसे काल में रहते थे, जब धर्मशस्त्र प्रणेताओं के इस आदर्श को राज्य की नीति के अंग के रूप में सामाजिक यथार्थ के धरातल पर व्यापक रूप से कार्यान्वित किया जा रहा है कि ब्राह्मणो को प्राप्त हुए अनुदानों के आधार पर उन्हें अपना जीवन–निर्वाह करना चाहिए। इस प्रकार के उपहारों के बदले ब्राह्मणों से यह आशा की जाती है कि वे निहित स्वार्थों के सैद्धांतिक समर्थकों के रूप में काम करेंगे और लोगों को प्रचलित व्यवस्था को मानने और उसके अनुसार आचरण करने को प्रेरित करेंगे। दर्शनवेत्ता के लिए ऐसा काम करने का रास्ता यह है कि इस दृष्टिकोण का प्रचार करे कि भौतिक जगत के प्रचलित मामलों में हस्तक्षेप करने के बदले भौतिक जगत के बंधनों से आत्मा को मुक्त करना, अर्थात् मोक्ष अथवा मुक्ति के लिए प्रयास करना, जीवन का सर्वोच्च आदर्श है।[22] वात्स्यायन यही काम करते है, भले ही तर्क और ज्ञान–मीमांसा की उस सारभूत बुद्धिसंगत पद्धति से, जिसे आन्वीक्षिकी विद्या कहते है,[23] और जिसका उन्होनें शानदार ढंग से समर्थन किया तथा प्रकृति की बनावट को अच्छी तरह समझने का प्रयास किया, यह कितना ही बेमेल क्यों न हो।

इस प्रकार, वात्स्यायन ने न्याय दर्शन में एक नयी परम्परा का सूत्रपात किया जिससे यह दर्शन चरम बुद्धिवाद और आत्मा की मुक्ति के सिद्धांत, जिसे अध्यात्म विद्या कहते है, का विचित्र सम्मिश्रण बन गया। जिस रूप से वात्स्यायन इसका औचित्य सिद्ध करना चाहते हैं, वह भी कम विचित्र नही। न्याय दर्शन की अनूठी विषय–वस्तु आन्वीक्षिकी विद्या है, क्योंकि इसके बिना यह दर्शन उपनिषदों की भांति मात्र अध्यात्म–विद्या रह जायेगा।[24] इनमें आन्वीक्षिकी का प्रस्थान संशय आदि चतुर्दश पदार्थों का विवेचन करता हैं जो अन्य किसी विद्या में नही हैं।[25] लेकिन उपनिषदों की आध्यात्म विद्या के सचमुच सुसंगत व्याख्याकार, बात को दूसरे ही ढंग से लेते हैं। उनके अनुसार, अध्यात्म विद्या की रक्षा का सबसे सार्थक ढंग यह है कि तर्क संबंधी सभी लम्बे–चौड़े दावों का सदा के लिए मुंह बंद कर दिया जाये।

बादरायण के ब्रह्म सूत्र में तर्क–विरोधी उग्र व्यंग्यात्मक आपत्तियों का यही कारण है। इससे हम इस बात को भी समझ सकते हैं कि शंकर ने ब्रह्म–सूत्र पर अपने भाष्य का श्रीगणेश सभी प्रमाणों की वैधता की कटु अस्वीकृति से क्यों किया? यह सब कुछ बहुत ही सुसंगत ढंग से किया गया। कारण यह कि आध्यात्म–विद्या की अनिवार्य पूर्णशर्त हैं–धर्मग्रन्थों में आस्था। और तर्क में विश्वास इस आस्था को डॉवाडोल कर देता है।[26]

Scanned by CamScanner

इसके विपरीत, वात्स्यायन का अपना दावा कि आन्वीक्षिकी विद्या न्याय दर्शन की विशिष्टता है,[27] हालांकि यह एक तरह से अध्यात्म–विद्या भी है, पूर्णतया असंगत है। क्या हम इसे एक ऐसे दर्शनवेत्ता की व्यक्तिगत त्रासदी मानें, जो अपनी बौद्धिक जिज्ञासा के बल पर निर्भर होने को विवश करता है जो उससे तकाजा करती है कि वह उक्त समाज के राजनीतिक हितों का साधन करने वाली अध्यात्म–विद्या का सक्रियता से प्रचार करें ? यदि यह बात सच है, तो आन्वाक्षिकी विद्या का यथासाध्य समर्थन करने के नाते वात्स्यायन अपने युग के सजग विज्ञानवेता है। लेकिन जहां तक वह अध्यात्म–विद्या का समर्थन करने को विवश होते है, वह उस समाज के शिकार बन जाते है, जो उनके सामने केवल परजीवी का जीवन व्यतीत करने का मार्ग छोड़ता है। जो हो, उनके दर्शन के बाद वाले पक्ष का हमारे लिए कोई विशेष महत्व नहीं है, क्योंकि यह उस घोर आदर्शवाद से अधिक भिन्न नहीं जिससे यह उधार लिया गया है। जो भी हो किन्तु अभी हमारी रूचि न्याय के यथार्थ स्वरूप अर्थात् उसके वैज्ञानिक अनुसंधान की विधि होने के स्वरूप को समझने में है ना कि किसी प्रकार का आरोप–प्रत्यारोप करने में। देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय कहते है कि ''वात्स्यायन ने आन्वीक्षिकी विद्या का शानदार ढंग से समर्थन करते हुए जो योगदान किया, वही हमारे लिए जीवंत परम्परा है।''[28]

उक्त विमर्शावलोकन के आधार पर कहा जा सकता हैं, कि आज पुनः आवश्यक्ता इसी बात की है कि महर्षि गौतम ने जिस आन्वीक्षिकी विद्या अथवा अनुसंधान अथवा अपने अभिष्ट क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने की जो विधि प्रदान की है उसको उसके यथार्थ स्वरूप में समझा जाये।

इस दर्शन में प्रमाण प्रमेय आदि जिन 16 पदार्थों का प्रतिपादन किया गया है उन पदार्थों में से प्रमाण से लेकर वाद तक के 10 पदार्थ एक ऐसी अध्ययन विधि का प्रतिपादन करते है जिनके द्वारा किसी भी क्षेत्र विशेष में जो मूलभूत तत्त्व है, उन तत्त्वों की स्पष्ट यथार्थ और सुपरिक्षित परिभाषाओं को प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही यह पदार्थ अनुसंधान की महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया का भी प्रतिपादन करते है। किसी भी विज्ञान के क्षेत्र में जो सामान्य नियम व्याप्त है उन नियमों का ज्ञान व्यक्ति इन पदार्थों के अवलम्बन पूर्वक कर सकता है। इस लिये वात्स्यायन ने अपने भाष्य में आन्वीक्षिकी न्याय विधा का महत्त्व बतलाये हुऐ कहा भी है कि न्याय विद्या सब विद्याओं का प्रदीप है, समस्त कर्मों का उपाय है पदार्थों के समस्त धर्मों का आश्रय है, यह न्याय विद्या या आन्वीक्षिकी विद्या बहुत ही विस्तृत और सूक्ष्म है।

इसलिये इस विद्या का ज्ञाता किसी भी क्षेत्र विशेष में विशेषज्ञता अर्जित करने की विधि को जानता है तथा उस विधि के अवलम्बन पूर्वक अपने क्षेत्र विशेष में विशेषज्ञता अर्जित करने की विधि को जानता है। इसी बात को पुष्ट करते हुए उद्योतकर कहते है कि न्याय दर्शन द्वारा प्रतिपादित पदार्थो के तत्त्व ज्ञान से व्यक्ति निश्रेयस को प्राप्त करता है। इसका अर्थ है कि जिस विद्या का जो तत्त्व है उस तत्त्व का ज्ञान प्रमाादि पदार्थों द्वारा होता है तथा ज्ञान पूर्वक प्राप्त होने वाली सफलता ही उस विद्या का निश्रेयस है, जैसे वार्ता विद्या में भूमि आदि तत्त्वों का ज्ञान तत्त्व ज्ञान है और अच्छी फसल की प्राप्ति उस तत्त्व का निश्रेयस है। दण्ड नीति में साम, दाम दण्ड व भेद आदि को समय और देश के अनुसार यथा शक्ति काम में लाने का ज्ञान तत्त्व ज्ञान है, और पृथ्वी की विजय निश्रेयस है। इस प्रकार न्याय दर्शन को एक ऐसी विद्या स्वीकार किया गया है जिस विद्या के ज्ञान पूर्वक व्यक्ति अपने अभिष्ट क्षेत्र में विशेषज्ञता अर्जित कर सकता है और अपने इस विशिष्ट और यथार्थ ज्ञान के अनुसार कार्य करके वह अपने अभिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल हो सकता है।

वर्तमान समय में न्याय दर्शन के स्वरूप का जो ज्ञान हमें प्राप्त है वह बहुत अल्प है और उस ज्ञान के आधार पर चाणक्य और उद्योतकर के दावे हमें अतिश्योक्ति प्रतीत होते है। वर्तमान समय में न्याय दर्शन का अध्ययन करते समय या तो मात्र इसकी प्रमाण व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है अथवा इसे वाद विवाद के क्षेत्र में जय–पराजय व्यवस्था के नियमों का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र समझा जाता है निश्चित रूप से न्याय दर्शन की प्रमाण व्यवस्था को स्वीकार करते है और उनका जितने अंशों में न्याय से मतभेद होता है, उतने अंशों में ही वे अपने प्रमाण संबंन्धि विचारों का प्रतिपादन करते है। परन्तु केवल प्रमाण मीमांसा का अध्ययन करके न्याय दर्शन के महत्त्व का मूल्यांकन कर पाना सम्भव नहीं है। इस लिए न्याय दर्शन के प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि पदार्थों के स्वरूप का शिक्षा दर्शन शास्त्रीय दृष्टि से अत्याधिक महत्त्व है। प्रमाण से जाने गये ज्ञेय पदार्थ के प्रति नये प्रश्नों, समस्याओं या जिज्ञासाओं का समाधान करने के लिए यह व्यवस्था होती है। न्याय दर्शन को मात्र प्रमाणों के ज्ञान तक ही सीमित नहीं किया जा सकता है। न्याय तो प्रारम्भ ही संशय से होता है, इस संशय के निराकरण तथा निर्णय तक पहुचने की पूरी प्रक्रिया न्याय दर्शन अथवा आन्वीक्षिकी का मूल है। इस महत्वपूर्ण

Scanned by CamScanner

आन्वीक्षिकी विद्या के द्वारा ही भारत विश्व गुरू बना था। आज भारत पुनः वही गौरव हासिल कर सके इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए न्याय दर्शन के इस मूल स्वरूप को समझना आवश्यक हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. न्याय सिद्वान्त मंजरी, डॉ. बलिराम शुक्ल, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली। (प्रस्तावना खण्ड)।
2. तर्क भाषा, बदरीनाथ शुक्ल, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वितीय संशोधित संकरण, वाराणसी, 1976, पृ. 4।
3. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, शारदा मंदिर, वाराणसी, 1942, पृ. 210।
4. भारतीय दर्शन, कुँवरलाल व्यासशिष्य, इतिहास विद्या प्रकाशन, दिल्ली 1980, पृ. 77।
5. संस्कृत वाड्.मय का इतिहास, डा. सुर्यकांत,किताब महल, इलाहाबाद, 1992। पृ. 383।
6. भारतीय दर्शन, रूपाली श्रीवास्तव, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2002, पृ. 108।
7. न्यायदर्शन (न्याय सूत्र–न्यायभाष्य) महामहोपाध्याय फणिभूषण तर्कवागीशकृत, भारतीय दर्शन अनुसंधान परिषद्, हिन्दी रूपान्तरण–किशोरनाथ झा, डी. के. प्रिन्टवर्ल्ड (प्रा.लि.) नई दिल्ली, 2015, पृ. 5।
8. भारतीय दर्शन, डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, सप्तम संस्करण–2006, पृ. 168।
9. "आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः" अध्य. 2, सूत्र 1। एवं "चतस्त्र एवं विद्या इति कौटल्यः" अध्य. 2, सू. 8। हिन्दी अनुवाद सहित, विद्याभास्कर वेदरत्न प्रो. उदयवीर शास्त्री, संस्कृत पुस्तकालय, सैदमिहा बाजार, लाहौर, 1925, पृ. 8।
10. भारतीय दर्शन में क्या जीवंत है और क्या मृत, देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–दिसम्बर 2007। पृ. 234।
11. वहीं, पृ. 234।
12. वहीं, पृ. 235।
13. कौटिल्य अर्थशास्त्र (प्रो. इन्द्र) प्रो. इन्द्र, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, सप्तम अवृत्ति – 2015, पृ. 19
14. "त्रयी विशेषों ह्यान्वीक्षकीति" कौटलीय अर्थशास्त्र,हिन्दी अनुवाद सहित, विद्याभास्कर वेदरत्न प्रो. उदयवीर शास्त्री, संस्कृत पुस्तकालय, सैदमिहा बाजार, लाहौर, 1925, अ. 2 सू. 3, पृ. 9।
15. भारतीय दर्शन में क्या जीवंत है और क्या मृत,देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–दिसम्बर 2007, पृ. 234।
16. कौटलीय अर्थशास्त्र, हिन्दी अनुवाद सहित, विद्याभास्कर वेदरत्न प्रो. उदयवीर शास्त्री, संस्कृत पुस्तकालय, सैदमिहा बाजार, लाहौर, अ.2, सू. 12। पृ. 9।
17. वहीं, पृ. 9।
18. तत्त्वोपप्लवसिंहः, राधावल्लभ त्रिपाठी, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड (प्रा.) लि. नई दिल्ली, 2015, पृ.VII (वाचारम्भण)
19. वहीं, पृ. X (वाचारम्भण)
20. भारतीय दर्शन एक नयी दृष्टि डॉ. जगदीश चन्द्र जैन, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008, पृ. 131।
21. भारतीय दर्शन में क्या जीवंत है और क्या मृत, देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–दिसम्बर 2007, पृ. 603।
22. वहीं, पृ. 605।
23. "प्रमाणैरर्थ परीक्षणं न्यायः। प्रत्यक्षागमाश्रितमनुमानं, साऽन्वीक्षा, प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्यान्वीक्षणमन्वीक्षा। तया प्रवर्तते इत्यान्वीक्षिकी न्याय विद्या न्यायशास्त्रम्" न्यायदर्शन (न्याय सूत्र–न्याय भाष्य) फणिभूषण तर्कवागीश, पृ. 93।
24. यासां चतुर्थी यमान्वीक्षिकी–न्यायविद्या। तस्याः पृथक्प्रस्थानाः संशयादयः पदार्थाः। तेषां पृथग्वचनमन्तरेणाऽध्यात्मविद्यामात्रमियं स्यात् यथोपनिषदः। वार्तिकभाष्य, पृ. 7।
25. न्यायदर्शन (न्याय सूत्र – न्यायभाष्य) महामहोपाध्याय फणिभूषण तर्कवागीशकृत, भारतीय दर्शन अनुसंधान परिषद्, हिन्दी रूपान्तरण–किशोरनाथ झा, डी. के. प्रिन्टवर्ल्ड (प्रा.लि.) नई दिल्ली, 2015, पृ. 5।
26. भारतीय दर्शन में क्या जीवंत है और क्या मृत, देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–दिसम्बर 2007, पृ. 606।
27. तर्क भाषा (डॉ. श्रीनिवास शास्त्री) साहित्य भण्डार, मेरठ, द्वादश संस्करण, 2001, पृ. 15।
28. भारतीय दर्शन में क्या जीवंत है और क्या मृत, देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–दिसम्बर 2007, पृ. 606।

Scanned by CamScanner